Postal Regn. - RTK/010/2020-22
RNI - HRHIN/2003/10425

ओ३म्

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा

आर्य प्रतिनिधि

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा का पाक्षिक मुखपत्र | अक्टूबर 2023 (द्वितीय)

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी महाराज

Email : aryapsharyana@yahoo.in
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
Visit us : www.apsharyana.org

आर्य हिन्दी-संस्कृत महाविद्यालय चरखी दादरी में आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा के यशस्वी प्रधान सेठ श्री राधाकृष्ण आर्य जी का सम्मान करते हुए साथ में सभा के अन्तरंग सदस्य श्री देवदत्त जी आर्य आदि गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

आर्य वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय पानीपत में भारत स्काउट्स एण्ड गाइड के आठ छात्रों को आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा के प्रधान सेठ राधाकृष्ण आर्य द्वारा सम्मानित किया गया।

सृष्टि संवत् 1,96,08,53,124
विक्रम संवत् 2080
दयानन्दाब्द 200

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा

की

मुख-पत्रिका

वर्ष 19 अंक 18

सम्पादक :

उमेद सिंह शर्मा

पत्रिका-शुल्क

देश में

वार्षिक-200 रुपये आजीवन-2000 रुपये

विदेश में

वार्षिक शुल्क 100 डॉलर

आजीवन 400 डॉलर

पत्रिका का स्वामित्व

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा (रजि०)

सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ,

गोहाना रोड, रोहतक-124001

सह-सम्पादक

आचार्य सोमदेव

सम्पादकीय विभाग

सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ, रोहतक

सम्पर्क सूत्र-

चलभाष :-

मो० 89013 87993

॥ ओ३म् ॥

आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय चिन्तन एवं वैदिक जीवन मूल्यों की पाक्षिक पत्रिका

आर्य प्रतिनिधि

अक्तूबर, 2023 (द्वितीय)

16 से 30 अक्तूबर, 2023 तक

इस अंक में....

1. सम्पादकीय–वेद-प्रवचन 2
2. विदुर-नीति प्रश्नोत्तरी 3
3. स्वास्थ्य चर्चा–लहसुन के अनेक लाभ 4
4. वैदिक उपनिषद् 5
5. क्या महाभारत में मन्त्र हैं? 7
6. आर्यजनों का निवास-स्थान है आर्यावर्त 9
7. क्या इस जन्म से पहले हमारा अस्तित्व था और मृत्यु के बाद भी रहेगा? 11
8. भारत के पितामह–महर्षि दयानन्द सरस्वती 13
9 वैदिक विद्वान् पण्डित नन्दलाल निर्भय कविरत्न को पुत्रशोक 15
10. समाचार-प्रभाग व शेषभाग 16

आर्य प्रतिनिधि पाक्षिक पत्रिका के प्रसार में सहयोग दें

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक उलट-पलटकर रख देने लायक नहीं, ब्लकि गंभीरतापूर्वक पढ़ने योग्य पत्रिका है। यदि आप इसके पाठक बनेंगे तो हमें विश्वास है कि पसन्द भी करेंगे और चाहेंगे कि इसे अन्य लोग भी पढ़ें। कृपया अपने जैसे गम्भीर पाठकों से 'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक पत्रिका की चर्चा करें, उन्हें इसका ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करके ऋषि ऋण से अनृण होवें।

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक का वार्षिक शुल्क 200/- रुपये एवं आजींवन शुल्क 2000/- रुपये है।

आप उपरोक्त राशि 'आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा' दयानन्दमठ रोहतक के नाम से बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा भिजवाकर सदस्य बन सकते हैं।

–सम्पादक

सम्पादकीय...

वेद-प्रवचन

❑ संकलन–उमेद शर्मा, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, दयानन्दमठ, रोहतक

गतांक से आगे....

इसी प्रकार दार्शनिक विचार-धाराएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। एक तो कहते हैं कि सृष्टि घटनाओं में कारण-कार्य की शृंखला है, दूसरे कहते हैं कि कारण और कार्य जैसी कोई निश्चित परम्परा नहीं, सब कुछ आकस्मिक चांस (Chance) है। खेती करने वाला **'कारण-कार्यवादी'** है। जुआरी आकस्मिकवादी है। **'यथाविधि परिश्रम का फल अवश्य मिलेगा'** यह प्रवृत्ति है किसानों की। वैदिक दर्शन किसानों का दर्शन है, जुआरियों का दर्शन नहीं। इस वेदमन्त्र में भी यही शिक्षा दी गई है कि किसान बन, जुआरी मत बन।

शायद कोई ऐसी शंका करे कि जुआरी का जुआ खेलना भी तो एक उपाय है, जुआरी तो किसान से भी कहीं अधिक परिश्रम करते हैं, जिसे जुए की लत लग जाती है उसे और कुछ नहीं सूझता। परन्तु जुआरी का परिश्रम उसके दार्शनिक सिद्धान्तों का परिणाम नहीं है। यदि सब वस्तुएँ आकस्मिक ही होती हैं तो धनाढ्य होने के लिए जुआ खेलने की भी आवश्यकता नहीं, ईश्वर झप्पर फाड़कर देता है।

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सब के दाता राम॥

परन्तु दास मलूका ने यह विचार नहीं किया कि अजगर और पंछी दोनों अपनी जीविका के लिए काम करते हैं। नीतिकारों ने यह भी तो कहा है कि **'न हि सुप्तस्य प्रविशन्ति मुखे मृगा:'**। जुआरी भाग्य को बनाता नहीं आजमाता है। किसान अपनी समस्त गुप्त शक्तियों को खींचकर बाहर ले आता है, अत: उसके लिए **'कृषस्व'** (खींचकर ले आ) ऐसा आत्मनेपद प्रयुक्त हुआ है। वेदों में बहुधा कृष्टि[1] शब्द पूर्ण विकसित मनुष्य के लिए आया है, हर मनुष्य को कृष्टि कह नहीं सकते। जिसने अपनी अन्तर्निहित शक्तियों क पूर्ण विकास किया है वही कृष्टि या पूरा मनुष्य (Cultural) है। इसलिए 'कृषि' या 'कृषस्व' से केवल खेत जोतने वाले किसान से ही तात्पर्य नहीं है, इन शब्दों के अर्थ व्यापक हैं। इस अर्थ में व्यापारी भी कृषक हैं, क्योंकि व्यापारी केवल किसान का एजेंट (Agent) मात्र है। इसी प्रकार कला-कौशल करने वाले सभी उद्योगी पुरुष खेती से किसी न किसी प्रकार सम्बन्ध रखते हैं। कृषि मूल है, अन्य समस्त व्यवसाय शाखामात्र हैं। आम की शाखा भी आम ही कहलाती है।

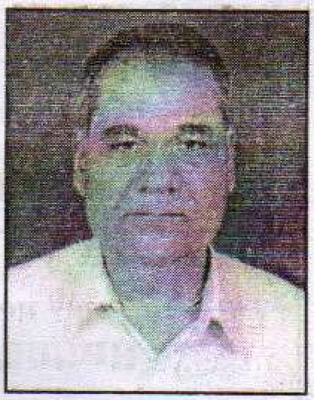

कृषि और कृष्टि शब्द कितने महत्त्वपूर्ण और व्यापक हैं, इसका पता अंग्रेजी के कल्चर शब्द से होता है। **कल्चरल** के लिए संस्कृत में **'संस्कृति'** शब्द है। कृषि और संस्कृति में थोड़ा-सा ही भेद है। कल्चर का साधारण अर्थ है एग्रीकल्चर (Agriculture) या खेती। हिन्दी भाषा में खेती, खेतिहर, किसान शब्दों के बहुत संकुचित अर्थ हैं, इसीलिए शायद कोई बड़ा आदमी खेतिहर या किसान कहलाने में संकोच करेगा। कृषक समाज का अधोभाग समझा जाता है, परन्तु संस्कृत का कृषि शब्द 'संस्कृति' शब्द से भी अधिक उत्कृष्ट है, क्योंकि संस्कृति या संस्कार का अर्थ तो है ही शोधना या मैल को दूर करना। चावलों से कंकड़ियों को बीनकर फेंक देना, चावलों का संस्कार है, परन्तु कृषि का अर्थ है गुप्त शक्तियों का विकास करना, जैसे बरगद के छोटे-से बीच में निहित शक्तियों का इस प्रकार से प्रादुर्भाव होना कि बरगद का बड़ा वृक्ष हो जाये। जैसे बरगद के बीच में बरगद की शक्तियाँ निहित हैं, इसी प्रकार हर मनुष्य के भीतर भी अनेक अद्‌भुत शक्तियाँ निहित हैं। जैसे बरगद का बीच घड़े के भीतर पड़ा-पड़ा वृक्ष नहीं हो सकता जब तक कि उसकी कृषि न की जाए। इसी प्रकार मनुष्य की शक्तियाँ बिना कृषि या विकास के बाहर नहीं आती।

क्रमश: अगले अंक में....

1. कर्षन्तीति कृष्टय: 'क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्' (पाणिनि सू० 3.3.174), द्रष्टव्य ऋग्वेद, सायण भाष्य (1.7.8)।

विदुर-नीति प्रश्नोत्तरी

❑ संकलन–कन्हैयालाल आर्य, संरक्षक–आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, रोहतक

गतांक से आगे....

हे राजन्! मैं आपसे फिर कहता हूँ कि आप अपने पुत्रों को तथा पाण्डवों को एक मानते हो तो दोनों के साथ समान रूप से व्यवहार कीजिए।

इस प्रकार महाभारत के उद्योगपर्व में प्रजागर पर्व नाम के अवान्तर विभाग में 39वां अध्याय एवं विदुर नीति के रूप में सातवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

••••

अष्टम अध्याय

प्रश्न 1. किस श्रेष्ठ पुरुष को शीघ्र ही सुयश की प्राप्ति होती है?

उत्तर–जो सत्पुरुषों से प्रशंसित (प्रेरित, आदर पाकर) हुआ, अनासक्त (आसक्ति रहित) होकर अपनी शक्ति का उल्लंघन न करके अर्थात् यथाशक्ति (अर्थ साधन आदि) बहुत कार्य कर डालता है, उस सज्जन को शीघ्र ही सुयश की प्राप्ति होती है। जब सत्पुरुष प्रसन्न हो जाते हैं, तो वे कल्याण करते हैं, क्योंकि सन्त कल्याण करने में समर्थ होते हैं।

प्रश्न 2. कौन व्यक्ति दुःखों से मुक्त होकर सुखपूर्वक शयन करता है?

उत्तर–जो व्यक्ति अधर्म से उपार्जित बहुत बड़ी धनराशि की ओर आकृष्ट नहीं होता अर्थात् उसे त्याग देता है, वह व्यक्ति दुःखों से उसी प्रकार मुक्त होकर सुखपूर्वक शयन करता है जैसे सर्प अपनी जीर्ण-शीर्ण (पुरानी) त्वचा (केंचुली) को त्याग देता है।

जब सर्प के शरीर की ऊपरी त्वचा (केंचुली) पक जाती है तब वह सरलता व शीघ्रता से भागने तथा देखने में असमर्थ हो जाता है, उस समय वह अपनी केंचुली को उतारकर सुख का अनुभव करता है। यहाँ विदुर जी का धृतराष्ट्र को यह संकेत है कि हे राजन्! जैसे तुम और तुम्हारे पुत्रों ने अधर्मयुक्त रीति से इस महान् राज्य को हथिया लिया है और तुम अब इसकी ओर बिना आकृष्ट हुए पाण्डवों को दे दोगे तो तुम भी दुःख से मुक्त होकर सुख की नींद सो सकोगे। विदुरनीति के प्रारम्भ में धृतराष्ट्र ने स्वयं को नींद न आने का कारण पूछा था। यहाँ विदुर जी धृतराष्ट्र को सुखपूर्वक नींद आने का उपाय बता रहे हैं।

प्रश्न 3. ब्रह्महत्या के समान कौन-से पापकर्म हैं?

उत्तर-(1) झूठे व्यवहार से आगे बढ़ना अर्थात् बढ़-चढ़कर झूठ बोलना।

(2) राजा के विषय में निन्दा फैलाना और चुगली करना।

(3) बड़ों के साथ झूठा व्यवहार करना–ये ब्रह्महत्या के समान पापकर्म हैं।

यहाँ विदुर जी दुर्योधनादि को ब्रह्महत्यारे के समान पापी की संज्ञा दे रहे हैं। दुर्योधनादि पाण्डवों के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर झूठ बोल रहे हैं। राजा युधिष्ठिर की निन्दा में लगे रहते हैं, जबकि युधिष्ठिर उनसे बड़े हैं तब भी कौरव लोग उनके साथ झूठा व्यवहार कर रहे हैं। इसलिए दुर्योधनादि को ब्रह्महत्यारे के समान दोषी घोषित कर रहे हैं।

प्रश्न 4. मृत्यु के समान कौन-सा कार्य है?

उत्तर–परगुणों में दोष देखना अपनी मृत्यु के समान है।

यहाँ विदुर जी कह रहे हैं कि हे राजन्! तुम और तुम्हारे पुत्र पाण्डवों के गुणों में भी दोष देख रहे हो, अतः तुम अपनी मृत्यु को निमन्त्रण दे रहे हो।

प्रश्न 5. लक्ष्मी का वध क्या है? अथवा धन-सम्पत्ति (कल्याण) का नाश कैसे होता है?

उत्तर–अत्युक्तिपूर्ण आत्मप्रशंसा कल्याण की नाशक है अथवा अभिमान ऐश्वर्य का नाशक है। कठोर बोलना या निन्दा करना लक्ष्मी का वध है। **अभिमानः श्रियं हन्ति**–अभिमान सब शोभा को नष्ट कर देता है।

यहाँ विदुर जी का भाव यह है कि दुर्योधनादि अपनी अत्यधिक प्रशंसा करते हैं, अभिमान करते हैं, कड़वे वचन बोलते हैं, पाण्डवों की निन्दा करते हैं, अतः इनका ऐश्वर्य शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा।

क्रमशः अगले अंक में...

स्वास्थ्य-चर्चा

लहसुन के अनेक लाभ

गतांक से आगे....

वमन, अजीर्ण, सफेद दस्त और कृमि रोग में लहसुन का बहुत उपयोग होता है। गुल्म और उदावर्त में भी इसका प्रयोग लाभ पहुँचाता है। जीर्ण आमवात और सन्धियों की सूजन में इसको पेट में देने से और इसका लेप करने से बहुत लाभ होता है। लेकिन इस लेप को बहुत अधिक समय तक नहीं रखना चाहिए क्योंकि इससे छाले उठने का भय रहता है।

पुराने कफ रोगों में और राजयक्ष्मा रोग में फुफ्फुस के अन्दर क्षत हो जाने पर लहसुन और वायविडंग का काढ़ा पिलाने से और लहसुन को पीसकर छाती पर लेप करने से बहुत लाभ होता है। राजयक्ष्मा रोग में लहसुन और वायविडंग का यह मिश्रण बहुत गुणकारी होता है। बच्चे की सूखी खाँसी भी इस मिश्रण से नष्ट हो जाती है।

हृदय रोग में लहसुन को देने से पेट का फूलना कम होकर हृदय का दबाव हल्का हो जाता है। हृदय को बल मिलता है और पेशब होता है।

व्रण, शोथ, विद्रधि, फोड़े-फुंसी इत्यादि रोगों में लहसुन का लेप प्रारम्भ में ही करने पर रोग नहीं बढ़ता, मवाद पीप पैदा होने के पश्चात् इसका लेप उपयोगी नहीं होता है। कर्णशूल में लहसुन को तेल में औटाकर तेल को कान में टपकाने से लाभ होता है। विषम ज्वर में लहसुन देने से थकावट पैदा नहीं होती।

क्षयरोग और लहसुन—आधुनिक खोजों के अनुसार लहसुन महाभयंकर और असाध्य क्षयरोग के ऊपर बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध डॉक्टर एम.डब्ल्यू. मेकडाफ का कथन है कि क्षयरोग के सम्बन्ध की जो खोज और जानकारी गत दो वर्षों में हमने प्राप्त की है उसमें 1082 क्षयरोगियों के ऊपर भिन्न-भिन्न प्रकार के 56 जाति के प्रयोग आजमा कर, उनके परिणामों का सूक्ष्म अध्ययन करके उनका वाकायदा रिकार्ड रखा गया है। इ रिकार्ड से मालूम होता है कि इन 56 जातियों के प्रयोगों में क्षय के कीटाणुओं और उनकी वजह से होने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों पर विश्वसनीय रूप से असर करने वाली सिर्फ दो ही औषधियाँ प्राप्त हुई हैं। उनमें से एकवनस्पति वर्ग की लहसुन है और दूसरी खनिज वर्ग का पारा है।

लहसुन में अलील सल्फाइड नामक एक जाति का उड़नशील तेल रहता है और यही तेल लहसुन में रहने वाले सब प्रकार के व्याधिनाशक गुणों का जनक है। यह तेल प्रबल जन्तुनाशक होता है और क्षय के कीटाणुओं के वृद्धि को रोकने का इसमें अद्भुत गुण रहता है। शरीर के अन्दर जाकर यह ऑक्सीजन वायु में मिलकर सल्फ्यूरिक एसिड नामक अम्ल को पैदा करता है और फुफ्फुस, त्वचा, मूत्रपिंड और यकृत् के द्वारा इन सब अंगों की विनियम क्रिया को सुधारता हुआ यह शरीर के बाहर निकलता है। शरीर के किसी भाग के ऊपर इस तेल की मालिश करने से यह शरीर में बहुत गहराई के साथ प्रवेश कर जाता है। हमारे अनुभवों में लहसुन ने क्षय रोग के ऊपर उत्तम परिणाम बतलाए हैं। क्षय के कीटाणु चाहे वे त्वचा, फुफ्फुस, सन्धियों तथा शरीर के और इनकी कीटाणुओं की वजह से पैदा होने वाले सब प्रकार के रोगों में भी इसस लाभ पहुँचता है।

डॉक्टर मिचीन लिखते हैं कि एक जवान मनुष्य, जिसके सारे पैर और पैर के पंजे की हड्डी में क्षय रोग हो गया था मेरे पास सलाह लेने आया, परन्तु उस रोगी को देखकर मैंने उसे पैर कटवाने की सलाह दी। परन्तु उक्त रोगी ने ऐसा करने से इनकार किया। छह महीने के बाद वही रोगी बिल्कुल तन्दुरुस्त हालत में मिला। मैंने आश्चर्यचकित होकर उससे सब हाल पूछा। उसने बतलाया कि लहसुन, नमक और मैश इन तीनों चीजों को समान भाग लेकर इनको पीसकर इनका लेप करने से ही मैं अच्छा हुआ हूँ। यह देखकर मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ और उसी समय से मुझे लहसुन के गुणों की जानकारी हुई। इसके पश्चात् स्वयं अनुभव लेने के लिए मैंने अनेक रोगियों पर इसे आजमाया और इसमें मुझे आश्चर्यजनक सफलता मिली। लहसुन में अलील सल्फाइड नामक जो तत्त्व रहता है वह इसके रस में तीन प्रतिशत से भी अधिक पाया जाता है। यही तत्त्व क्षय के कीटाणुओं को नष्ट करके शरीर के भिन्न-भिन्न भागों से क्षय रोग को नष्ट करता है।

क्रमशः अगले अंक में...

वैदिक-उपनिषद्

❑ इन्द्रसिंह पूर्व न्यायाधीश, C/o-29 नई अनाजमण्डी, भिवानी मो० 9416057813

गतांक से आगे....

उपनिषदों के भिन्न-भिन्न नामों से प्राचीन ऋषियों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। प्रथम तो ऋषियों ने ईश्वरीय ज्ञान वेद से ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् उपलब्ध हुए ज्ञा. पर क्रियात्मक प्रयोग करके अपने-अपने अनुभव लिपिबद्ध किए। जैसे कि वर्तमान में विद्यालयों में थ्योरी पढ़ाकर प्रेक्टिकल कराया जाता है। ऋषियों के अनुभव हमारे कल्याण के लिए उपनिषदों, दर्शनों, ब्राह्मणग्रन्थों, स्मृतियों आदि के रूप में उपलब्ध हैं। वेदों के वृक्षों पर आर्षग्रन्थ रूपी फूल लगे हैं। चारों वेद संहिताएँ स्वत: प्रमाण मानी जाती हैं और अन्य आर्षग्रन्थ जो वेदानुकूल हैं, वे परत: प्रमाण हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द ने दश उपनिषदों-ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, ऐतरेयी, तैत्तिरेयी, छान्दोग्य, बृहदारण्यक को प्रामाणिक माना है। (सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास)। कहने को तो डेढ सौ के करीब उपनिषद् ग्रन्थ मिलते हैं।

उक्त प्रामाणिक उपनिषदों में जो एक मुण्डकोपनिषद् है, उसके एक निम्न श्लोक पर विचार-मनन करते हैं-

वेदान्त-विज्ञान सुनिश्चितार्था: संन्यास-योगाद् यतय: शुद्ध सत्वा:।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृता: परिमुच्यन्ति सर्वे॥

सरलार्थ-जो वेदान्त (Relision) और विज्ञान (Science) से जीवन के लक्ष्य को निश्चित रूप में जान गए हैं, जो संसार में संन्यास (Detechment) और योग (Attechment) से यति हो गए हैं, जो शुद्धांताकरण हैं, वे परम अन्तकाल में परम अमृत होकर ब्रह्मलोक में चले जाते हैं और बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं।

अब इस सूत्र का गहराई से अर्थ समझने का प्रयास करेंगे। वेदान्त का अर्थ है-जहाँ शब्द नहीं, जहाँ सिद्धान्त नहीं। जहाँ सब शास्त्र पीछे छोड़ दिए गए। जहाँ वेद का अन्त हो गया। मन के पार तो शास्त्र नहीं हो सकता। वेदान्त है मन के पार उड़ान; अन्मनदशा। वेदान्त है-ध्यान-समाधि।

दूसरा शब्द है-विज्ञान। विज्ञान का अर्थ है विशेष ज्ञान। ज्ञान वह है जो दूसरों से मिलता है और विशेष ज्ञान वह है जो अपने भीतर से आविर्भूत होता है। उसका कोई साईंस से लेना-देना नहीं है। वेदान्त और विज्ञान एक ही सिक्के के दो पहलू हुए। वेदान्त है-शास्त्र के पार जाना-वह है मार्ग और विज्ञान है-उपलब्धि-विशेष ज्ञान की प्रतीति, अनुभूति, साक्षात्कार, विश्वास नहीं अपना अनुभव और तभी जीवन का सुनिश्चित अर्थ पता चलता है जिसने वेदान्त के साधन से विज्ञान को उपलब्ध किया है, उसे जीवन का अर्थ और अभिप्राय पता चलता है। उसके बिना जीवन का अर्थ पता नहीं चलता।

'संन्यासयोगाद् यतय: शुद्ध सत्वा:'

लोग समझते हैं-संसार को छोड़ दे जो, वह संन्यासी। तो भी जनक संन्यासी नहीं हैं-जिनके पास बड़े-बड़े संन्यासी मार्गदर्शन के लिए आते हैं। अगर संसार में रहकर जान सकते हैं, तो संन्यास फिर अपरिहार्य न रहा। परन्तु संन्यास निश्चित ही अपरिहार्य है, अनिवार्य है। संन्यास के बिना कोई भी नहीं जान सकता। तो हमें संन्यास के सही अर्थ को जानना पड़ेगा। संन्यास का अर्थ संसार को छोड़ देना नहीं है। संन्यास का अर्थ है-असार, व्यर्थ को हम पकड़े हुए हैं, उसका छूट जाना-छोड़ना नहीं, छूट जाना। जैसे भर्तृहरि से तो साम्राज्य छूटा, लेकिन देखने वालों ने समझा छोड़ा। ऐसी ही घटना महावीर व बुद्ध के साथ घटी कच्चे फल को तोड़ना पड़ता है, पका फल अपने से गिर जाता है। और पक कर कोई फल गिरता है, तो न तो वृत्त को कोई घाव लगता है, न कोई पीड़ा होती है, सिर्फ वृत्त निर्भर होता है और पके फल को भी कोई पीड़ा नहीं होती। वेद में पके खरबूजे का उदाहरण दिया है। इस प्रकार फल का गिरना बिल्कुल नैसर्गिक है, स्वाभाविक है, आवश्यक है। तो संन्यास लिया नहीं जाता, बल्कि व्यक्ति स्वत: संन्यस्त हो जाता है, विरक्त हो जाता है। स्वामी दयानन्द ने स्वामी पूर्णानन्द से तो संन्यास परम्परा के शिष्टाचार की औपचारिकता मात्र कराई थी, ताकि कार्याधिक्य में बाधक भोजनादि का बखेड़ा दूर होवे। वे विरक्त होकर तो घर से ही निकले थे। उनके पिताजी व घरवाले पक कर बेल से

स्वत: अलग हुए फल को पुन: उसी बेल पर लगा देने का निरर्थक प्रयास कर रहे थे, जो हो नहीं सकता था। इसीलिए न हो सका। और इसका दूसरा पहलू है–योग। संन्यास का अर्थ हुआ असार का छूट जाना। योग का अर्थ हुआ–सार से जुड़ जाना। योग का अर्थ होता है–जुड़ना, यह दो पहलू हुए। योग परम घटना है, जीवन की, जहाँ आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है। आजकल दूरदर्शन आदि पर विभिन्न प्रकार की प्रदर्शित की जा रही शारीरिक क्रियाओं (आसनों) का नाम योग रखा हुआ है। बल्कि बिगाड़ कर योगा कहने लगे हैं, जैसे कि कृष्ण का कृष्णा और राम का रामा बना दिया है। यह पाश्चात्य उच्चारण की नकल मात्र है। हमें संसार को शुद्ध उच्चारण सिखाना चाहिए, उल्टा हम दीनता–हीनता प्रकट करते हुए अशुद्ध बोलने लगे हैं। यदि हाथ–पैर हिलाने या विभिन्न आसनों को करने का नाम योग मान लिया गया तो सामान्यजन में बड़ी भारी भ्रान्ति घर कर जाएगी और वास्तविक योग को लोग भूल ही जायेंगे। फिर तो हमारे हाली–पाली सब योगी हैं।

संन्यास नकारात्मक है। कचरे को छोड़ दिया, खाली कर लिया अपने को कचरे से–विचारों से, वासनाओं से, इच्छाओं से–और जैसे ही तुम खाली हुए कि परमात्मा से जुड़े। जैसे ही तुम खाली हुए कि तुम मिटे और परमात्मा ही बचा। तभी तो शास्त्र बोलता है–अहम् ब्रह्मास्मि। उस परम मिलन का नाम योग है। संन्यास पहलू का एक हिस्सा और योग पहलू का दूसरा हिस्सा। संन्यास नकारात्मक, योग विधायक। जैसे वेदान्त नकारात्मक–शब्द को छोड़ो और विज्ञान विधायक–ताकि तुम उस विशेष अनुभूति, विशेष ज्ञान को उपलब्ध हो जाओ, जो जीवन को धन्य कर देती है। ऐसे व्यक्ति शुद्ध होता है, शुद्ध सत्व को उपलब्ध होता है।

'ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले'

मृत्यु के बाद ऐसा व्यक्ति ब्रह्मलोक में प्रवेश करता है।

'परामृता परिमुच्यन्ति सर्वे'

और ब्रह्मलोक में पहुँचकर मरने के बाद वह सर्वरूपेण मुक्त हो जाता है। यह व्याख्या एकदम ही भ्रान्त है। ब्रह्मलोक कोई भौगोलिक स्थान नहीं है, कहीं आकाश में। ब्रह्मलोक है तुम्हारे भीतर उस अनुभूति का नाम। वेदान्त से विज्ञान, संन्यास से योग और इन सबको एक शब्द में कहा जा सकता है–ब्रह्मसाक्षात्कार, ब्रह्मानुभूति, ब्रह्मलोक में प्रवेश। तुम्हारा अन्तर्मन अभी भी ब्रह्मलोक में ही स्थापित है और मृत्यु के बाद यह घटना नहीं घटती, जीवन में ही घटती है। जब स्वामी जी को भयंकर विष दे दिया गया था और वे अजमेर में भिनाय की कोठी में उपचाराधीन थे, तब उनसे पूछा गया कि स्वामी जी क्या स्थिति है? तो उत्तर दिया कि ब्रह्म में स्थित हूँ। फिर पूछा कि हम तो शरीर के बारे में पूछ रहे हैं, तो बोले शरीर का क्या है, यह तो बनने-बिगड़ने वाली वस्तु है। लेकिन जीवन में भी मरने की एक कला है। जहाँ अहंकार मिट गया, वहाँ मृत्यु घट गई। अहंकार की मृत्यु पर घटती है, यह बात। शरीर की मृत्यु से इसका कोई लेना–देना नहीं है। क्योंकि शरीर मर भी जाए और अहंकार बना रहे, तो तुम फिर दूसरा शरीर ग्रहण करोगे। जब अहंकार मिट गया तो तुम शरीर से मुक्त हो गए। इसलिए हमने जनक को विदेह कहा है। देह में रहते हुए, संसार में रहते हुए विमुक्त कहा है। इस प्रकार की स्थिति में देह के अन्त के पश्चात् आत्मा बन्धनों से मुक्त होकर अपने जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है।

–इन्द्रसिंह पूर्व न्यायाधीश, C/o-29 नई अनाजमण्डी, भिवानी मो० 9416057813

प्रेरक वचन

- **प्रकृति ईश्वर से एकाकार करने वाला माध्यम है।**
- **यदि आप पराजय से सीख सकें तो आप दरअसल हारे नहीं हैं।**
- **अनुशासन ही लक्ष्य और सफलता के बीच का पुल है।**
- **स्वयं को जीतना पहली और सर्वश्रेष्ठ विजय है।**
- **काम मुश्किल नहीं होता, मुश्किल तो अनुशासन होता है।**
- **अपने अज्ञान की सीमा जानना ही सच्चा ज्ञान है।**
- **पैसे को भगवान बना लेंगे तो वह आपको शैतान की तरह सतायेगा।**
- **लोगों में शक्ति ही नहीं, इच्छाशक्ति की कमी होती है।** संकलन–भलेराम आर्य, गांव सांघी (रोहतक)

क्या महाभारत में मन्त्र हैं?

❑ राजेश आर्य, गांव आट्टा, जिला पानीपत मो० 9991291318

गतांक से आगे....

बरसूँ जगत् में जलद-सा, जीवन करूँ सबका हरा।
फूलें फलें हिलमिल रहें, बन स्वर्ग जाए यह धरा॥
यह कामना पूरी करूँ, हे ईश! यह वरदान दो।
जग को बना दूँ मैं सुखी, ऐसा मुझे सज्ज्ञान दो॥

प्रिय पाठकवृन्द! पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय जी ने लिखा है-''पौराणिक काल में साहित्यिक मनोरंजन के लिए मनमानी कथाएँ गढ़ ली गईं। ऐसे किस्से हर युग में बनाये जाते हैं। परियों की कहानियाँ, जासूसी उपन्यास, चमत्कार चित्रण, ये साहित्यकारों की कल्पना शक्ति और पाठकों की विनोदप्रियता के क्रीडाक्षेत्र हैं। परन्तु जब धार्मिक ग्रन्थों में इनका पुट दे दिया जाता है तो ये मनोविनोद के स्थान में भीषण भ्रान्तियों और दु:खदायी प्रथाओं के हेतु बन जाते हैं।''

पुराणों की कहानियों के कारण ही समाज में भ्रान्ति फैली कि देवता आकाश (स्वर्ग) में रहते हैं और मनुष्य मरने के बाद स्वर्ग में जाते हैं। इन भ्रान्ति का निराकरण सबसे पहले स्वामी दयानन्द ने किया। पूना में प्रवचन देते समय उन्होंने कहा-''मन्द, सुगन्ध और शीतल वायु जहाँ चल रही है, रमणीय वनस्पतियाँ जहाँ उगी हुई हैं और जहाँ पर स्फटिक के सदृश निर्मल निर्झरोदक बह रहा है, ऐसे हिमालय की ऊँची चोटी पर विष्णु वास करने लगा। उसी को वैकुण्ठ भी कहते थे। फिर दूसरे हिमाच्छादित भयंकर ऊँचे प्रदेश में महादेव वास करने लगा, उसे कैलाश कहते थे। इसके आगे विष्णु और महादेव ये दोनों कुलों के नाम पड़ गये।''

''कुबेर अलकापुरी में रहने वाले थे। यह सब इतिहास केदार खण्ड में वर्णन किया गया है। हम स्वयं भी इन सब ओर घूमे हुए हैं। ....कश्मीर से लेकर नेपाल तक हिमालय की जो ऊँची-ऊँची चोटियाँ हैं, वहाँ देवता अर्थात् विद्वान् पुरुष रहते हैं।''

''प्राचीन समय में जिसको त्रिविष्टप् (स्वर्ग) देश कहते थे उसको वर्तमान में मुल्क तिब्बत कहते हैं।''

अर्थात् देवताओं का स्वर्ग हिमालय पर ही था, आसमान में नहीं। महाभारत में भी कुछ ऐसा ही संकेत मिलता है-वनपर्व, अध्याय 42 के अनुसार अर्जुन हिमालय के रास्ते से होकर स्वर्ग को गया। वहाँ लिखा है कि इन्द्र के सारथि मातलि ने बागडोर खींचकर घोड़ों को काबू में किया और अर्जुन उस दिव्य रथ के द्वारा ऊपर की ओर जाने लगे।

वनपर्व के अध्याय 146 में लिखा है कि काम्यक वन (हिमालय) में रहते समय द्रौपदी के कहने से भीम सुगन्धित कमलपुष्प लाने गया, तो मार्ग में एक बन्दर लेटा हुआ था-

दिवंगमं रुरोधाथमार्गं भीष्मस्य कारणात्।
अनेन हि पथा मा वै गच्छेदिति विचार्य सः॥ 66॥
तं वानरवरं धीमानतिकायं महाबलम्।
स्वर्गपन्थानमावृत्य हिमवन्तमिव स्थितम्॥ 83॥
विना सिद्धगतिं वीर गतिरत्र न विद्यते।
देवलोकस्य मार्गोऽयमगम्यो मानुषैः सदा॥ 93॥
कारुण्यात् त्वामहं वीर वारयामि निबोध मे।
नातः परं त्वया शक्यं गन्तुमाश्वसिहि प्रभो॥ 94॥

''तब उन्होंने (बन्दर-हनुमान ने) भीमसेन के हित के लिए स्वर्ग की ओर जाने वाला मार्ग रोक दिया ताकि भीमसेन इसी मार्ग से स्वर्गलोक की ओर न चले जायें।''

''परमबुद्धिमान् बलवान् महाबाहु भीमसेन उस महान् वन में विशालकाय महाबली वानरराज को स्वर्ग का मार्ग रोक कर हिमालय के समान स्थित....।''

''वीर! सिद्ध पुरुषों के सिवा और किसी को यहाँ गति नहीं है। यह देवलोक का मार्ग है, जो मनुष्यों के लिए सदा अगम्य है।''

''वीरवर! मैं दयावश ही तुम्हें आगे जाने से रोकता हूँ। मेरी बात सुनो। प्रभो! यहाँ से आगे तुम किसी प्रकार जा नहीं सकते। इस पर विश्वास करो।''

वनपर्व, अध्याय 156 के अनुसार हिमालय स्थित विभिन्न नदियों, पर्वतों, तीर्थों आदि का भ्रमण करने के पश्चात् युधिष्ठिर ने भीम से कहा-

इमं वैश्रवणावासं पुण्यं सिद्धनिषेवितम्।
कथं भीम गमिष्यामो गतिरन्तरधीयताम्॥ 12॥

"भीमसेन! यह सिद्धसेवित पुण्य प्रदेश कुबेर का निवास स्थान (अलकापुरी) है। अब हम कुबेर के भवन में कैसे प्रवेश करेंगे? इसका उपाय सोचो।"

एवं ब्रुवति राजेन्द्रे वागुवाचाशरीरिणी।
न शक्यो दुर्गमो गन्तुमितो वैश्रवणाश्रमात्॥ 13॥

"महाराज युधिष्ठिर के ऐसा कहते ही आकाशवाणी बोल उठी-"कुबेर के इस आश्रम से आगे जाना सम्भव नहीं है, यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम है।"

वनपर्व, अध्याय 159 में आर्ष्टिषेण ने युधिष्ठिर से कहा-

इहस्थैरेव तत् सर्वं श्रोतव्यं भरतर्षभाः।
विहारो ह्यत्र देवानाममानुषगतिस्तु सा॥ 21॥
न चाप्यतः परं शक्यं गन्तुं भरतसत्तमाः।
विहारो ह्यत्र देवानाममानुषगतिस्तु सा॥ 22॥
देवदानवसिद्धानां तथा वैश्रवणस्य च।
गिरेः शिखरमुद्यानमिदं भरतसत्तम॥ 23॥

"भरतकुलभूषण पाण्डवो! तुम्हें यहीं रहकर वह सब कुछ (गन्धर्वों, अप्सराओं आदि के नृत्य गीत संगीत) देखना या सुनना चाहिये। वहाँ पर्वत के ऊपर जाने का विचार तुम्हें किसी प्रकार भी नहीं करना चाहिए। भरतश्रेष्ठ! इससे आगे जाना असम्भव है। वहाँ देवताओं की विहारस्थली है। वहाँ मनुष्यों की गति नहीं हो सकती। भरतश्रेष्ठ! पर्वत का यह शिखर देवताओं, दानवों, सिद्धों तथा कुबेर का क्रीडा-कानन है।"

महाप्रस्थानक पर्व अध्याय 3 से भी यही स्पष्ट होता है कि पाण्डव परीक्षित को राजा बनाकर अन्त में हिमालय पर्वत पर ही गये थे। वहीं द्रौपदी व अन्य पाण्डव मार्ग में गिर पड़े थे। इसके बाद देवराज इन्द्र का रथ युधिष्ठिर को स्वर्ग मे ले जाने के लिए आया, तो युधिष्ठिर ने कहा-

भ्रातरः पतित मेऽत्रगच्छेयुस्ते मया सह।
न विना भ्रातृभिः स्वर्गमिच्छेः गन्तुं सुरेश्वर॥ 3.3॥

"देवेश्वर! मेरे भाई मार्ग में गिरे पड़े हैं। वे भी मेरे साथ चलें, क्योंकि मैं भाइयों के बिना स्वर्ग में नहीं जाना चाहता।"

इन्द्र से यह सुनकर कि वे तुम्हें स्वर्ग में मिलेंगे, युधिष्ठिर उसके रथ में बैठ गये। पर स्वर्ग में जाकर भाइयों को न देखकर युधिष्ठिर फिर बोले-

तैर्विना नोत्सहे वस्तुमिह दैत्यनिबर्हण।
गन्तुमिच्छामि तत्राहं यत्र ते भ्रातरो गताः॥ 3.37॥
यत्र सा बृहती श्यामा बुद्धिसत्त्वगुणान्विता।
द्रौपदी योषितां श्रेष्ठा यत्र चैव गता मम॥ 3.38॥

"दैत्यसूदन! अपने भाइयों के बिना मुझे यहाँ रहने का उत्साह नहीं होता; अतः मैं वहीं जाना चाहता हूँ, जहाँ मेरे भाई गये हैं तथा जहाँ ऊँचे कद वाली, श्यामवर्णा, बुद्धिमती, सत्त्वगुणसम्पन्ना एवं युवतियों में श्रेष्ठ मेरी द्रौपदी गई है।" (यहाँ युधिष्ठिर ने द्रौपदी को अपनी पत्नी कहा है, पाँचों पाण्डवों की नहीं)।

स्वर्गारोहण पर्वके प्रथम अध्याय में स्वर्ग को त्रिविष्टप् (तिब्बत) लिखा है-

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य मम पूर्व पितामहाः।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च कानि स्थानानि भेजिरे॥ 1॥

जनमेजय ने वैशम्पायन से पूछा-"मुने! मेरे पूर्व पितामह, पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र स्वर्गलोक में पहुँचकर किन-किन स्थानों को प्राप्त हुए?"

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य तव पूर्व पितामहाः।
युधिष्ठिरप्रभृतयो यदकुर्वत तच्छृणु॥ 3॥

वैशम्पायन ने कहा-"जनमेजय! स्वर्ग में पहुँचकर तुम्हारे पूर्व पितामह युधिष्ठिर आदि ने जो कुछ किया, वह बताया जाता है, सुनो।"

प्रबुद्ध पाठक! जरा सोचिये, क्या यह सारा वर्णन महर्षि दयानन्द की मान्यता के अनुरूप नहीं है? आज भी हिमालय के प्रदेशों को देवभूमि कहा जाता है। कैलाश मानसरोवर को शिव की तपस्थली माना जाता है। तिब्बत के राजा इन्द्र को दलाईलामा कहा जाता है। जब देवता और स्वर्ग धरती पर थे और हैं, तो हम आकाश में क्या ढूँढ़ रहे हैं? माता-पिता, आचार्य, अतिथि, विद्वान्, परोपकारी सज्जन देव कहलाते हैं। सुखविशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का नाम स्वर्ग है। हाँ, वैदिक देवता इन्द्र (सूर्य, मेघ) आकाश में रहते हैं, जिनके दरबार में अप्सराएँ (किरणें, बिजलियाँ) नाचती हैं।

आर्यजनों का निवास-स्थान है आर्यावर्त

❑ डॉ. बिजेन्द्रपाल सिंह, चन्द्रलोक कॉलोनी, खुर्जा, मो० 8979794715

भारत देश का नाम भारत तब से है जब पृथ्वी पर जैन, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम का नाम भी नहीं था। सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास में लिखा है–

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरम् गिर्योरार्य्यावर्त्त विदुर्बुधाः॥ 1॥
सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्त प्रचक्षते॥ 2॥

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र तथा सरस्वती पश्चिम में अटक नदी, पूर्व में दृषद्वती जो नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकलकर बंगाल के आसाम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम ओर होकर दक्षिण समुद्र में मिली है जिसको ब्रह्मपुत्रा कहते हैं और जो उत्तर के पहाड़ों से निकलकर समुद्र की खाड़ी में अटक मिली है। हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वरपर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने भी देश हैं उन सबको आर्यावर्त इसलिये कहते हैं कि यह आर्यावर्त्त देव अर्थात् विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से आर्यावर्त्त कहाया है। (स०प्र०अ०स०)

आर्यावर्त से पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और कोई आर्यों के पूर्व इस देश में बसते थे।

धार्मिकों व विद्वानों का स्थान आर्यावर्त्त-सत्यार्थ-प्रकाश के अष्टम समुल्लास में ही महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं–

विजानीध्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्यते रन्धया शासदव्रतान्।
ऋ० मं० 1, सूक्त 51, मं० 8॥

आर्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्तपुरुषों का और इनसे विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है। यह भी कहा है कि आर्यावर्त देश से जो भिन्न देश हैं वह द्स्यु और म्लेच्छ कहाते हैं।

यह इसलिए लिखा है कि कुछ वर्ग को भारत देश के नाम से भ्रान्ति है अथवा वह भारत देश यहाँ के इतिहास तथा संस्कृति से ईर्ष्यावश, छलनीति चलाकर षड्यन्त्र करना चाहते हैं, क्योंकि यहाँ भारत भूमि पर ऐसे ही यवन, म्लेच्छ जो दस्यु आदि थे, ने आक्रमण किए और यहाँ मतान्तरण, लूट-पाट, बलात्कार जैसे पैशाचिक दुष्कर्म, कुकृत्य किये। उन्होंने यहाँ के निवासियों को हिन्दू तथा स्थान का नाम हिन्दुस्तान दिया। मैगस्थनीज

विदेशी यात्री ने 'इण्डिका' नाम से पुस्तक लिखी और जब अंग्रेज यहाँ आए तब उन्होंने इस देश का नाम 'इण्डिया' रख दिया। सरकारी गैरसरकारी पत्र आदि में भी इण्डिया शब्द प्रचलन में आ गया।

भारत देश नाम की प्राचीनता-भारत देश उस देश का नाम है जहाँ सदैव से मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम तथा योगिराज श्रीकृष्ण, शकुन्तला पुत्र भरत जैसे पराक्रमी वेदों के विद्वान् कर्मयोगी महापुरुष एवं चक्रवर्ती शासक होते आये हैं। वीरों के पराक्रम से इतिहास की पुस्तकें भरी पड़ी हैं।

प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार पृथ्वी के सात द्वीप जम्बूद्वीप (एशिया), प्लक्षद्वीप (यूरोप), शाल्मलीद्वीप (दक्षिण अफ्रीका), कुशद्वीप (उत्तरी अफ्रीका), क्रोज्यद्वीप (उत्तर अमेरिका), शाकद्वीप (आस्ट्रेलिया), पुष्करद्वीप (दक्षिण अमेरिका) थे।

जम्बू द्वीप जिसे एशिया के नाम से जाना जाता है। उसके नौ खण्ड इलाव्रत, भद्राश्व, किंपुरुष, भारत, हरि, केतुमाल, रम्यक्, कुरु, हिरण्यमय थे। भारत जम्बू द्वीप में आर्यावर्त्त का अंग था। आर्यावर्त्त आर्यों का स्थान रहा है, जिसमें पारस (इरान), अफगानिस्तान, पाकिस्तान, भारत, नेपाल, तिब्बत, भूटान, म्यांमार, श्रीलंका, मालद्वीप थाइलैण्ड मलेशिया, कम्बोडिया, वियतनाम, लाओस यह आर्यावर्त्त कहा जाता था।

जम्बूद्वीप समस्तानामेतेषां मध्य संस्थितः।
भारतं प्रथमं वर्ष ततः किंपुरुष स्मृतः॥
हरिवर्ष तथैवान्यनर्मेरोर्दक्षिणतो द्विजः।
रम्यकं चोत्तरं वर्ष तस्यैवानु हिरण्यम्॥
उत्तराः कुरवैश्चैव यथा वै भारतं तथा॥ विष्णुपुराण

जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गते–संकल्प की प्रथा-भारत शूरवीरों की भूमि रही है। मिट्टी को भी विदेशी विद्वानों ने अपने माथे से लगाया है। आज भी जब भी कोई संस्कार घर-परिवार में होते हैं, तो यजमान से संकल्प कराया जाता है-

''ओ३म् तत्सत् श्री ब्रह्मणो दिवसे द्वितीये प्रहरार्धे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे, एकोवृन्दः षण्णवतिकोटिः अष्टलक्षाणि त्रिपञ्चाशतशहस्राणि पंच विशत्युत्तर शततमे कलियुगे....तथा जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्त्तान्तरगते०'' यह संकल्प पढ़ा जाता है और यह आज से नहीं, सदियों लाखों वर्षों से परिपाटी आर्यावर्त्तान्तर्गते भरतखण्डे नाम लेकर चली आ रही है। कोई भी पुरोहित विद्वान् हो विवाह आदि सभी संस्कारों के समय या कोई यज्ञ करते-कराते हों, बोला जाता है। चक्रवर्ती शासक राजा दिलीप, रघु, दशरथ, राम आदि तथा पाण्डव युधिष्ठिर, परीक्षित, जनमेजय से लेकर अब तक अश्वमेध आदि समस्त बड़े-बड़े यज्ञों के समय यह संकल्प बुलवाया जाता रहा है, यह द्योतक है। उस आर्यावर्त्त की कीर्ति का जिसका भारत अभिन्न अंग रहा है, आज उस देश पर उसके नाम पर अंग्रेजी नाम इण्डिया की मोहर लगवाने हेतु आवाज उठायी जा रही है।

यह भारत देश है अंग्रेजों का इण्डिया नहीं-मैकाले के विचारों पर चलने वाले ही आज देश का नाम इण्डिया करने पर बल दे रहे हैं, जबकि इस देश का नाम प्राचीनकाल से ही 'भारतवर्ष' रहा है। इतिहास की पुस्तकों, प्राचीन ग्रन्थों आदि में भारत नाम ही है। विदेशी आक्रान्ताओं ने इसे अपने अनुसार हिन्दुस्तान व इण्डिया नाम दिया। अब विदेशी कुछ भी बोल दें, हम देश का नाम थोड़े ही बदल देंगे। अंग्रेजों ने इसका नाम इंडिया दिया। वह इण्डिया लिखते थे परन्तु इण्डिया भारत के लिए ही प्रयुक्त किया गया शब्द है। संविधान के अनुच्छेद 1(1) में स्पष्ट लिखा है कि इण्डिया दैट इज भारत शैल वी ए यूनियन ऑफ स्टेटस। अर्थात् इण्डिया जो कि भारत है यहाँ भारत शब्द से देश के नाम की यथार्थता व प्राचीनता सिद्ध होती है।

यह वही भारत है जिसका नाम महाभारत युद्ध से जुड़ा है। कुरुक्षेत्र में गीता के उपदेशों से सम्बन्ध है। रामचन्द्र जी के भाई भरत थे। शकुन्तला दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम से जाना जाता है यह भारत।

भारत नाम ऐसे गौरवशाली देश का है जिसका यश-कीर्ति समस्त विश्व में थी। यही है महाराजा विक्रमादित्य का भारत, चन्द्रगुप्त मौर्य का भारत।

शिक्षा संस्कृति से विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा षड्यन्त्र-यवन व अंग्रेज डच पुर्तगाली यह सब बाहर से भारत में इसलिए आए वह समझते थे भारत धन-धान्य से भरपूर स्वर्ण व हीरा, मोती व रत्नों से परिपूर्ण देश है। इस देश को सोने की चिड़िया कहा जाता था अतः विदेशी यहाँ लूटने के उद्देश्य से आते रहे और लूटा भी यहाँ की संस्कृति से भी खिलवाड़ किया। वह यहाँ तक कहने लगे कि संस्कृत निरर्थक भाषा है। रामायण महाभारत काल्पनिक है। मैकाले ने यहाँ स्थित गुरुकुल आश्रम विध्वंस करा दिए। वैदिक शिक्षा को समाप्त कर दिया तथा चर्च मदरसों में पाश्चात्य शिक्षा आरम्भ करा दी। कान्वैंट व अंग्रेजी माध्यम के स्कूल खोल दिए जो आज तक चल रहे हैं। भारतीयों को यहाँ के इतिहास व संस्कृति से अलग कर दिया गया। भारतीय महापुरुषों के इतिहास को हटा दिया गया। गुरु गोविन्द सिंह, हरीसिंह नलवा, हम्मीर सिंह, विक्रमादित्य, बप्पा रावल, राणा कुम्भा कठ गणराज्य की राजकुमारी कार्विका पोरस से भारतीयों को वंचित कर दिया तथा लुटेरे हुमायूँ, बाबर, अकबर, तैमूर का इतिहास शिक्षा पुस्तकों में पढ़ाया जाने लगा।

यज्ञशील ऋषियों का देश–भारत देश के विषय में प्राचीन ग्रन्थों में विशद वर्णन है। ब्रह्मपुराण में लिखा है कि भारतभूमि में लोग तपश्चर्या करते हैं, यज्ञ करने वाले हवन करते हैं तथा परलोक के लिए आदर पूर्वक दान भी देते हैं। इस जम्बूद्वीप में भारतवर्ष श्रेष्ठ है। यज्ञों की प्रधानता के कारण इस (भारत) को कर्मभूमि तथा अन्य द्वीपों को भोगभूमि कहते हैं।

भारत के विषय में इन प्राचीन ग्रन्थों में ही नहीं अपितु जनसामान्य में भी संस्कार आदि में नाम आता है। भारत का नाम अति प्राचीन है। उस नाम उस समय था जब ईसाई, जैन, बौद्ध, यवन आदि मतों का उदय भी नहीं था, न मतों को कोई जानता था। धरती पर दूर-दूर तक वैदिक धर्म का

शेष पृष्ठ 16 पर....

क्या इस जन्म से पहले हमारा अस्तित्व था और मृत्यु के बाद भी रहेगा?

❑ मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला-2, देहरादून-248001, मो० 9412985121

हम कौन हैं? इस प्रश्न पर जब हम विचार करते हैं तो इसका उत्तर हमें वेद एवं वैदिक साहित्य में ही मिलता है जो ज्ञान से पूर्ण, तर्क एवं युक्तिसंगत तथा सत्य है। उत्तर है कि हम मनुष्य शरीर में एक जीवात्मा के रूप में विद्यमान हैं। हमारा शरीर हमारी आत्मा का साधन है। जिस प्रकार किसी कार्य को करने के लिये उसके लिये उपयुक्त सामग्री व साधनों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार हमारी आत्मा को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये यह मनुष्य शरीर मिला है। शरीर केवल सुख व दु:ख भोगने का ही आधार नहीं है अपितु यह जीवात्मा के साध्य ईश्वर की प्राप्ति के लिये है जिसे साधना के द्वारा प्राप्त व सिद्ध किया जाता है। हमारे जीवन का लक्ष्य वा साध्य ईश्वर को जानना, उसे प्राप्त करना, उसका साक्षात्कार करना तथा सत्कर्मों को करके जन्म व मरण के बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करना है। मोक्ष जीवात्मा की दु:ख रहित तथा आनन्द से पूर्ण अवस्था का नाम है। मोक्ष में जीवात्मा को लेशमात्र भी दु:ख नहीं होता। वह आनन्द से युक्त रहती है। सुखपूर्वक समय व्यतीत करती है। उसे वृद्धावस्था प्राप्त होने, किसी प्रकार का रोग व दुर्घटना होने तथा मृत्यु व पुनर्जन्म का दु:ख नहीं सताता। उसे नरक व नीच प्राणी योनियों में जन्म लेने की चिन्ता भी नहीं सताती। मोक्ष अवस्था में सभी जीव ज्ञान व बल से युक्त रहते हैं जिससे वह दु:खों से मुक्त तथा सुखों व आनन्द से युक्त रहते हैं। परमात्मा व मोक्ष ही जीवात्मा के लिये साध्य है जिन्हें जीवात्मा मनुष्य जन्म लेकर वेदाध्ययन व वेदज्ञान को प्राप्त कर तथा वेदानुकूल कर्मों को करके सिद्ध व प्राप्त करती है। शरीर न हो और यदि वेदज्ञान व ऋषियों के ग्रन्थ न हों, तो मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य को न तो जान सकता है और न ही प्राप्त कर सकता है। अत: जीवात्मा को मानव शरीर परमात्मा की अनुकम्पा व दया के कारण मिला है जो हमारे माता-पिता के समान व उनसे कहीं अधिक हमारे हितों का ध्यान रखते हैं व हमें सुख प्रदान कराते हैं। इस कारण से मनुष्यों के लिये केवल सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, अनादि, नित्य, दयालु एवं न्यायकारी परमात्मा ही उपासनीय, ध्यान, चिन्तन व जानने योग्य है। जो मनुष्य इसके लिये प्रयत्न नहीं करता उसका जीवन व्यर्थ एवं निरर्थक बनकर रह जाता है।

हम शरीर नहीं अपितु एक चेतन जीवात्मा हैं, इसका अनुभव प्रत्येक मनुष्य करता है। भाषा के प्रयोग की दृष्टि से भी आत्मा व शरीर पृथक्-पृथक् सत्तायें सिद्ध होती हैं। हम कहते हैं कि हमारा शरीर, मेरा हाथ, मेरा सिर, मेरी आंख आदि आदि। मैं व मेरा में अन्तर होता है। मैं मेरा नहीं होता। मेरा शरीर मुझ आत्मा का है। अत: आत्मा व शरीर पृथक् हैं। इसलिये हम शरीर के लिये मैं तथा आत्मा का प्रयोग न कर मेरा शरीर का प्रयोग करते हैं। दूसरा प्रमाण यह है कि आत्मा एक चेतन सत्ता व पदार्थ है। हमारा शरीर व इसके सभी अंग जड़ वा निर्जीव हैं। शरीर की मृत्यु हो जाने पर शरीर क्रिया रहित व चेतना विहीन हो जाता है। शरीर को काटें या अग्नि में जलायें, उसको दु:ख नहीं होता, परन्तु जीवित अवस्था में एक कांटा भी चुभे तो पीड़ा होती व आंख में आंसू आते हैं। इससे आत्मा नाम की शरीर से पृथक् सत्ता सिद्ध होती है जो शरीर में रहते हुए सुख व दु:ख का अनुभव करती वा कराती है व जिसके शरीर से निकल जाने अर्थात् मृत्यु हो जाने पर सुख व दु:ख की अनुभूति होनी बन्द हो जाती है। अत: आत्मा को जानना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इसको जानकर ही हम अपने कर्तव्यों के महत्त्व को समझ सकेंगे और ऐसा कोई काम नहीं करेंगे जिसका परिणाम दु:ख व सन्ताप हो।

वैदिक साहित्य में दु:ख के कारणों की चर्चा की गई है। इस जन्म में हमें जो दु:ख मिलते हैं वह हमारे पूर्वजन्म के वह कर्म होते हैं जिनका फल हम पिछले जन्म में भोग नहीं सके। कारण था कि भोग से पूर्व ही वृद्धावस्था व मृत्यु आ गई थी। इस जन्म में दूसरे प्रकार के दु:ख इस जन्म के

क्रियमाण कर्मों के कारण भी होते हैं। एक व्यक्ति स्वार्थ व लोभवश चोरी करता है जिसका दण्ड उसे न्याय व्यवस्था से मिलता है। इससे उसे दु:ख होता है। इसी प्रकार से जीवात्मा वा मनुष्य को आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक दु:ख भी होते हैं जो हमारे कर्मों पर आधारित न होकर देश, काल व परिस्थितयों पर आधारित होते हैं। इन सब प्रकार के दु:खों से बचने के लिये हमें वेदज्ञान की प्राप्ति कर सद्कर्मों यथा ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र देवयज्ञ, इतर पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ एवं बलिवैश्वदेवयज्ञ करने के साथ परोपकार व दान आदि को करना होता है। ऐसा करके हम भविष्य में कर्मों के कारण होने वाले दु:खों से बच सकते हैं। हमारी आत्मा अनादि, नित्य, अविनाशी, अमर तथा सनातन सत्ता है। यह सदा से है और सदा रहेगी। इसलिये यह अनादिकाल से जन्म व मरण के बन्धनों में फंसती रहती है व मनुष्य जन्म प्राप्त कर साधना करके मुक्त होकर मोक्षावधि को प्राप्त होकर उसके बाद पुन: संसार में जन्म-मरण के चक्र में आवागमन करती रहती है। इस कर्म-फल रहस्य को वेद, सत्यार्थप्रकाश, उपनिषद् तथा दर्शन आदि ग्रन्थों को पढ़कर जाना जा सकता है। इन ग्रन्थों का अध्ययन करने से हम इस संसार सहित ईश्वर व जीवात्मा के सत्यस्वरूप से परिचित हो सकते हैं तथा दु:खों को दूर करने व भविष्य में अशुभ व पाप कर्मों के कारण होने वाले दु:खों से भी बच सकते हैं।

हमारी आत्मा अनादि व नित्य है। इस कारण से इसका अस्तित्व सदा से है और सदा रहेगा। आत्मा नाशरहित है। विज्ञान का नियम है कि अभाव से भाव तथा भाव से अभाव उत्पन्न नहीं होता। भाव पदार्थों में संसार में केवल तीन ही पदार्थ हैं। यह पदार्थ हैं ईश्वर, जीव एवं प्रकृति। इन तीन पदार्थों की कभी उत्पत्ति नहीं हुई। यह सदा से हैं और सदा रहेंगे। परमात्मा व जीवात्मा अपने स्वरूप से अविकारी पदार्थ है। ईश्वर व जीवात्मा में विकार होकर कोई नया पदार्थ कभी नहीं बनता। प्रकृति त्रिगुणात्मक है जिसमें सत्त्व, रज व तम यह तीन गुण होते हैं। इस प्रकृति व गुणों में विषम अवस्था उत्पन्न होकर ही यह दृश्यमान जड़ जगत् जिसे संसार कहते हैं, बनता है। ईश्वर, जीव तथा प्रकृति की सत्ता स्वयंभू अर्थात् अपने अस्तित्व से स्वयं है। यह तीनों पदार्थ किसी प्राकृतिक पदार्थ से बने हुए नहीं हैं। इन तीनों पदार्थों का कोई अन्य पदार्थ उपादान कारण नहीं है। यह तीनों मौलिक पदार्थ है। यह अनादि काल से अस्तित्व में हैं। इसी कारण से ईश्वर व जीवात्मा आदि सभी तीनों पदार्थं अनादि काल से हैं। अत: हमारी आत्मा भी अनादि काल से संसार में है। यह चेतन, अल्पज्ञ, एकदेशी, ससीम, नित्य, अविनाशी, जन्म व मरण के बन्धनों में फंसी हुई, कर्म करने में स्वतन्त्र तथा फल भोगने में परतन्त्र सत्ता है। ईश्वर सर्वज्ञ व सब सत्य विद्याओं से युक्त सत्ता है। ईश्वर ही जीवों को सुख देने व उनके पूर्वजन्मों के कर्मों का फल भुगाने के लिये इस संसार की रचना व पालन करते हैं। अनादि काल से आरम्भ सृष्टि की रचना, पालन व प्रलय का क्रम निरन्तर चलता रहता है। इस रहस्य को जानकर ही वेदों के अध्येता, ऋषि व विद्वान् आदि लोभ में नहीं फंसते थे और दु:खों की सर्वथा निवृत्ति के लिये ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र यज्ञ, परोपकार एवं दान आदि सहित सत्योपदेश व वेदप्रचार आदि का कार्य करते हुए दु:खों से मुक्ति के लिए मोक्ष प्राप्ति के उपाय करते थे। अब भी वेदानुगामी विद्वान् एवं हम सबको भी वेद में सुझाये पंच महायज्ञों का ही पालन करना है। इसी से हमारा त्राण व रक्षा होगी। इसकी उपेक्षा से हम मोह व लोभ को प्राप्त होंगे जिनका परिणाम दु:ख व बार बार मृत्युरूपी दु:खों को प्राप्त होना होता है। इन वैदिक सिद्धान्त व मान्यताओं को हमें जानना चाहिये। यदि नहीं जानेंगे तो हम कभी भी दु:खों से बच नहीं सकते।

ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति अनादि, नित्य, अमर व अविनाशी सत्तायें हैं। इस कारण इन तीनों पदार्थों का अतीत में अस्तित्व रहा है तथा भविष्य में सदा-सदा के लिये रहने वाला है। ईश्वर जीवों के लिये अतीत व वर्तमान में सृष्टि बनाकर कर जीवों को जन्म देकर सुख व कर्मों का फल देते आये हैं और आगे भविष्य में भी सदा ऐसा करते रहेंगे। आत्मा की आयु अनन्तकाल की है। इस दृष्टि से हमारा यह मनुष्य जन्म जो मात्र लगभग एक सौ वर्षों में सिमटा हुआ है, इसका आयु काल प्राय: नगण्य ही है। इस आयु में भी मनुष्य का अधिकांश समय बाल अवस्था, सोने तथा अन्य अन्य कार्यों में लग जाता है। शेष समय धन कमाने व सुख

शेष पृष्ठ 16 पर....

भारत के पितामह—महर्षि दयानन्द सरस्वती

❑ पं० नन्दलाल निर्भय पत्रकार, भजनोपदेशक

नदियाँ-नाले, बहुत जगत् में, गंगा जैसा पानी ना।
दानी जग में बहुत हुए हैं, भामाशाह-सा दानी ना॥
मत-मतान्तर बहुत जगत् में, वेदों जैसी वाणी ना।
ज्ञानी-ध्यानी बहुत हुए हैं, दयानन्द-सा दानी ना॥

प्यारे सज्जनो! पौराणिक लोग शंकर (शिवजी) की कलाकृति बनाकर उसकी पूजा का ढोंग करते हैं। उस कलाकृति जो एक मनुष्य की शक्ल की होती है। उसके शिर में गंगा बहती हुई दिखाते हैं, मांथे पर चन्द्रमा बना हुआ दर्शाते हैं, उस कलाकृति के गले में सांपों की माला लिपटी हुई दिखाते हैं तथा उसके पूरे शरीर पर भस्म (मिट्टी) लगी हुई दर्शाते हैं। मैंने एक पौराणिक विद्वान् से पूछा कि यह किस व्यक्ति की कलाकृति है तो वह तपाक से बोला-श्रीमान् जी, यह संसार का संहार करने वाले परमात्मा शिव की मूर्ति है। मैंने उससे दोबारा पूछा कि इसके सिर से गंगा बहती हुई क्यों दिखाई गई है? माथे पर चन्द्रमा क्यों बनाया गया है तथा इसके शरीर पर मिट्टी क्यों लगाई गई है और गले में सांप क्यों लिपटे हुए हैं? वह व्यक्ति बोला-श्रीमान् जी, मुझे इसका ज्ञान नहीं है।

उसकी बात सुनकर मैंने उसे समझाया कि यह एक सच्चे साधु का चित्र है। इसे ठीक तरह समझने का यत्न करो। एक साधु के मस्तिष्क से वेद (ज्ञान) की गंगा बहनी चाहिए, उसके हृदय में दयाभाव होना चाहिए अर्थात् वह शीलवन्त होना चाहिए। साधु विश्व का कल्याण अर्थात् अपने विरोधियों की भलाई करने वाला होना चाहिए तथा वह आरामतलबी अर्थात् प्रमादी नहीं होना चाहिए। जो घूम-घूमकर संसार को वेदज्ञान कराए वही सच्चा साधु है। इस युग में महर्षि दयानन्द सरस्वती वास्तव में ऐसे ही त्यागी-तपस्वी वैदिक विद्वान् परोपकारी ईश्वरभक्त थे। भारतवर्ष में 19वीं शताब्दी नवजागरण का काल है। नवजागरण के आदिपुरुष राजा राममोहनराय थे। उन्होंने अपने मिशन की पूर्ति के लिए ब्रह्म समाज की स्थापना की थी। राजा राममोहनराय अंग्रेजों के राज्य और अंग्रेजी भाषा को भारतवर्ष के लिए ईश्वर का वरदान मानते थे। वे वास्तव में अंग्रेजों के पक्के भक्त थे। अत: राजा राममोहन राय समाज सुधार के कार्य में तो लगे किन्तु स्वराज का चिन्तन उनके लिए कुछ विशेष महत्त्व न रखता था।

स्वामी दयानन्द का कार्यकाल राजा राममोहनराय से लगभग 50 वर्ष पीछे है। स्वामी दयानन्द का जन्म 1825 में हुआ था और 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के वे प्रत्यक्षदर्शी थे। बहुत सारे इतिहासकारों का मत है कि स्वामी दयानन्द ने संन्यासी के रूप में उस समय प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया था। उनके ग्रन्थों में भी ऐसे अन्त: प्रमाण उपस्थित है जो उनके सक्रिय भाग लेने का समर्थन करते हैं।

1857 का स्वतन्त्रता संग्राम असफल हो चुका था और अंग्रेजों का प्रभुत्व सारे भारत देश पर स्थापित हो चुका था। महारानी विक्टोरिया ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से शासन ले लिया था और भारतवर्ष का शासन सीधे तौर पर बरतानियाँ सरकार के हाथों में चला गया था।

महारानी विक्टोरिया ने भारत के लिए प्रसिद्ध घोषणा-पत्र प्रसारित कर दिया था, जिसके अनुसार अंग्रेज सरकार भारतवर्ष की प्रजा के साथ पूर्ण न्याय करेगी। किसी के साथ धार्मिक दृष्टि से कोई पक्षपात नहीं होगा और अंग्रेज सरकार भारतवर्ष की सुख-सुविधा का ध्यान रखेगी। स्वामी दयानन्द ने अपने युगनिर्माता क्रान्तिकारी ग्रन्थ 'सत्यार्थ-प्रकाश' में महारानी विक्टोरिया की इस घोषणा का साफ उत्तर दिया है-

"अब अभाग्योदय से आर्यावर्त में आर्यों का अखण्ड-स्वतन्त्र स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है, सो भी विदेशियों को पादाक्रान्त हो रहा है। राज कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत-मतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपातशून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है, परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक्

शिक्षा, अलग-अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है।''

स्वामी दयानन्द ने अपने लेखों-व्याख्यानों से प्रार्थना की, पुस्तकों में सर्वत्र स्वतन्त्र-स्वराज्य के लिए प्रार्थना की है, वहीं ब्रह्मसमाज के नेताओं की अंग्रेजी राज्य के प्रति भक्ति प्रशंसा स्वामी दयानन्द के विचारों के अनुकूल नहीं थी और वे खुलकर इस सम्बन्ध में उनकी आलोचना करते थे। केशवचन्द्र सेन ब्रह्मसमाज के प्रसिद्ध नेता थे और वे ईसाइयों से और ईसाई सम्प्रदाय से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपना पूजा स्थान मन्दिर न बनवाकर गिरिजाघर बनवाया था। स्वामी दयानन्द यह सब कुछ विदेशी राज्य और उसकी भक्ति का फल मानते थे। उन्होंने ब्रह्मसमाज की आलोचना में लिखा है-''इन लोगों में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के बहुत से आचरण ले लिए हैं। खान-पान, विवाह आदि का नियम भी बदल दिए हैं। अपने देश की प्रशंसा और पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके स्थान में भरपेट निन्दा करते हैं।'' स्वामी दयानन्द भारतवर्ष के लिए देशभक्ति और अपने इतिहास तथा महापुरुषों की प्रतिष्ठा को बहुत महत्त्व देते थे। स्वदेश भक्ति का एक प्रखर-प्रमाण 'सत्यार्थप्रकाश' के निम्न उद्धरण में मिलता है-''भला जब आर्यावर्त में उत्पन्न हुए हैं, इसी देश का अन्न, जल खाया पिया, अब भी खाते-पीते हैं, तब अपने माता-पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़कर दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना ब्रह्मसमाजी और प्रार्थना समाजियों का एतद्देश की संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इंगलिश भाषा पढ़ के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एकमत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का बुद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है?''

स्वामी दयानन्द ने अंग्रेजों की उपनिवेशवादी नीतियों का भी खुलकर विरोध किया है। यहाँ तक अंग्रेज लेखकों ने उन्हें बागी-फकीर और विद्रोही संन्यासी की उपाधि दे डाली थी। पीछे उनकी पुस्तकों पर इलाहाबाद में जस्टिस हैरिंगटन की अदालत में अभियोग भी चला था। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा भारतीय जनता पर लगाए गए नमक कर, जंगली उत्पाद पर चुंगी और सरकारी कागजों को मूल्य स्टैम्प-ड्यूटी का जमकर विरोध किया है और यह सब सन् 1875 ई० का काम है। महात्मा गांधी ने नमक कर का विरोध 1930 ई० में किया था और स्वामी दयानन्द ने मोहनदास गांधी से 55 वर्ष पूर्व नमक कर के विरुद्ध आवाज उठाई थी। वे लिखते हैं-''एक तो यह बात है कि जो नोन (नमक) और पौनरोटी (चुंगी) में जो कर लिया जाता है वह मुझको अच्छा नहीं मालूम देता, क्योंकि नोन के बिना दरिद्र का भी निर्वाह नहीं होता, किन्तु सबको नोन की आवश्यकता होती है। वे मजूरी-मेहनत से जैसे-तैसे निर्वाह करते हैं। उनके ऊपर भी यह नोन का कर दण्डतुल्य है। पौनरोटी (चुंगी) से भी गरीब लोगों को बहुत क्लेश होता है क्योंकि गरीब लोग कहीं से घास छेदन करके ले आए व लकड़ी का भार ले आए उनके ऊपर कौडियों के लगाने से उनको अवश्य क्लेश होगा। इससे पौनरोटी (चुंगी) का जो कर स्थापना करना, तो भी हमारी समझ से अच्छा नहीं।'' वे आगे स्टैम्प ड्यूटी का विरोध करते हुए लिखते हैं-''सरकार कागद (स्टैम्प) को बेचती है और बहुत-सा कागजों पर धन बढ़ादिया है, इससे गरीब लोगों को बहुत क्लेश पहुँचता है, सो यह बात राजा को करनी उचित नहीं है। कचहरी में बिना धन के कुछ बात होती नहीं। इससे जो कागजों के ऊपर धन लगाना है सो भी मुझको अच्छा मालूम नहीं देता।'' इन्हीं सब बातों को देखकर भारतीय संसद के प्रथम अध्यक्ष श्री अनंत शयन्य अयंगर ने स्वामी दयानन्द को राष्ट्रपितामह की उपाधि दी थी। श्री अयंगर जी कहते हैं-''गाँधी जी अगर राष्ट्र के पिता थे तो दयानन्द सरस्वती राष्ट्र के पितामह थे। महर्षि जी हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्ति और स्वाधीनता आन्दोलन के आद्य प्रवर्तक थे। गांधी जी कुछ बातें में उन्हीं के पदचिह्नों पर चले। यदि महर्षि दयानन्द हमें मार्ग न दिखाते तो अंग्रेजी शासन में उस समय सारा पंजाब मुसलमान हो जाता और सारा बंगाल ईसाई हो जाता।''

सरदार वल्लभभाई पटेल की दृष्टि में स्वामी दयानन्द स्वराज्य के प्रथम उद्गाता थे। वे कहते हैं-''बहुत से लोग महर्षि दयानन्द को सामाजिक और धार्मिक सुधारक कहते हैं, परन्तु मेरी दृष्टि में वे सच्चे राजनेता थे जिन्होंने सारे देश में एक भाषा, खादी, स्वदेश प्रचार, पंचायतों की स्थापना, दलितोद्धार, राष्ट्रीय और सामाजिक एकता, प्रचण्ड

देशाभिमान और स्वराज्य की घोषणा यह सब बहुत पहले सर्वप्रथम देश को दिया था।'' स्वामी दयानन्द यह समझते थे कि देश का उद्धार स्वराज्य से ही होगा और साथ ही कृषि और उद्योग की उन्नति के लिए वे बहुत प्रयत्नशील थे। उनका मानना था कि कृषि की उन्नति और पशुओं की रक्षा किए बिना सम्भव नहीं है, इसीलिए उन्होंने 'गोकृष्यादि रक्षिणी सभा' का प्रस्ताव ही नहीं किया अपितु उसके लिए प्रयत्नशील भी रहे। अंग्रेजों की नीति भारत के परम्परागत उद्योगों को मिटाने की थी। अंग्रेजी उत्पाद को बढाने के लिए वे भारत के कारीगरों, बुनकरों आदि को बहुत कष्ट देते थे। स्वामी दयानन्द ने स्वदेशी का आन्दोलन तो चलाया ही साथ ही भारतीय युवकों को उद्योग-धन्धों की शिक्षा पाने के लिए जर्मनी के एक प्रिंसिपल वाइज के साथ पत्राचार कर उन्हें भेजने की व्यवस्था की। इस प्रकार कांग्रेस से 50 वर्ष पूर्व ही स्वामी दयानन्द ने स्वराज्य और स्वदेशी के लिए सक्रिय एवं प्रचण्ड प्रयास किया था।

वस्तुत: स्वामी दयानन्द महाराज के शुभ कार्यों एवं संघर्ष के कारण ही लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल, गोपालकृष्ण गोखले, सरदार अर्जुनसिंह जैसे महान् नेता तथा पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल, मदनलाल धींगड़ा, वीर ऊधमसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, खुदीराम बोस, करतारसिंह सराबा, राजगुरु, सुखदेव, भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारियों का निर्माण हुआ था, जिन्होंने अंग्रेजी राज्य की जड़ों को हिला दिया था और आज हम स्वतन्त्र भारत में सुख की सांस ले रहे हैं। इसलिए हम सबको महर्षि दयानन्द महाराज के बताए वेदमार्ग पर चलकर भारत को संसार का सम्राट बनाना चाहिए। अत: अब भारत के नवयुवकों और नवयुवतियों से मेरा निवेदन है-

भारत माँ के पुत्र-पुत्रियो!, वेदमार्ग अपनाओ तुम।
जगद्गुरु ऋषि दयानन्द के, मिल करके गुण गाओ तुम॥
प्यारा भारत देश हमारा, इसकी सेवा किया करो।
देवों की धरती है भारत, इसकी खातिर जिया करो॥
देशभक्त ईमानदार बन, बढ़-चढ़कर के काम करो।
लेखराम, गुरुदत्त बनो तुम, सारे जग में नाम करो॥

संपर्क-आर्य सदन बहीन, जनपद पलवल (हरयाणा)
मो० 9813845774, 9053252682

वैदिक विद्वान् पण्डित नन्दलाल निर्भय कविरत्न को पुत्रशोक

आर्यजगत् के प्रख्यात वैदिक विद्वान् पण्डित नन्दलाल निर्भय कविरत्न के एकमात्र पुत्र श्री जयदेव आर्य भजनोपदेशक आर्य सदन बहीन जनपद पलवल (हरयाणा) का हृदयाघात के कारण दिनांक 12.10.2023 गुरुवार को दु:खद निधन हो गया। शवयात्रा में हजारों व्यक्तियों ने भाग लेकर संवेदना प्रकट की। विशेष बात इस संस्कार में यह रही कि अन्त्येष्टि संस्कार पंडित नन्दलाल निर्भय ने वैदिक रीति के अनुसार एवं स्वयं कराया तथा इस अवसर पर उन्होंने परमात्मा का विशेष ध्यान करते हुए गायत्री मन्त्र का जाप सभी उपस्थित महानुभावों से कराया तथा बताया कि जगत्पिता जगदीश्वर न्यायकारी दयालु सारे संसार का पालन करने वाला है। हमें उस प्यारे प्रभु को कभी नहीं भूलना चाहिए तथा सदैव शुभकर्म करके मानवता का परिचय देना चाहिए। पंडित जी ने सभी महानुभावों का इस अवसर पर उपस्थित होने पर आभार व्यक्त किया तथा शान्ति-पाठ कराया। यह देखकर सब हैरान थे। दिनांक 22.10.2023 को शान्तियज्ञ एवं श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया।

अन्त में पण्डित नन्दलाल निर्भय ने सभी महानुभावों का शान्तियज्ञ एवं श्रद्धांजलि सभा में भाग लेने पर धन्यवाद किया। शान्तिपाठ के पश्चात् समारोह का समापन किया गया।

-सत्यप्रकाश आर्य, ग्राम बहीन (पलपल) हरयाणा

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक समाचार-पत्र की सदस्यता ग्रहण कर तथा धार्मिक एवं सामाजिक आयोजनों में 'आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा' को सहयोग राशि भेजकर वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में सहभागी बनिये।
सम्पर्क-मो० 08901387993

आर्यजनों का निवास-स्थान.. पृष्ठ 10 का शेष...

प्रकाश था, वैदिक धर्म का आचरण था। प्रत्येक परिवार में अग्निहोत्र होते थे। सूर्योदय के समय घर-घर से अग्निहोत्र के समय मधुर ध्वनि में वेद की ऋचाओं की ध्वनि सुनाई देती थी।

आसुरी शक्तियों से सावधान रहने की आवश्यकता–आर्यों का निवासस्थान रही है भारतभूमि, जो जम्बूद्वीप के आर्यावर्त के अन्तर्गत था। प्राचीन काल से इसका नाम यश, कीर्ति, शौर्य, धन-धान्य, विद्या व ज्ञान का प्रतीक भारतवर्ष था, परन्तु यवन, म्लेच्छ, फिरंगियों ने अपने अनुसार हिन्दुस्तान, इण्डिया आदि रख दिए। यह देश स्वर्णभूमि था। विदेशों में सोने की चिड़िया कहा जात था। विदेशी जो दस्यु थे आकर इसे लूटने लगे। यहाँ लूट-पाट, रक्तपात, बलात्कार व मतान्तरण का अन्धा खेल खेला, मानवता को रौंदा, दरिन्दगी की हदें पार कीं। इन्होंने संस्कृति के साथ भी क्रूरतम अत्याचार किये।

वही विचारधारा आज भी भारतीय संस्कृति का विरोध करने पर तुली हुई है। यहाँ का अन्न खाते यहीं का विरोध करते हैं। आज आवश्यकता है इन आसुरी शक्तियों से सावधान रहने की। यह षड्यन्त्र यवन, अंग्रेज जो यहाँ आतंक स्थापित करने आये थे, तभी से हो रहे हैं। राष्ट्र में आतंकवाद तो हो ही रहे हैं। हमारे साहित्य संस्कृति के साथ भी खिलवाड़ किया जा रहा है। इनको पैनी दृष्टि से परखना व निवारण करना आवश्यक है और ऐसा भी करना होगा कि आगे कोई षड्यन्त्र न कर सके।

सूचना

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा दयानन्दमठ रोहतक से सम्बन्धित समस्त आर्यसमाजों एवं संस्थाओं के अधिकारियों को अवगत कराया जाता है कि जो भी आर्यसमाज एवं संस्था सभा के PAN नम्बर तथा 80G का प्रयोग कर रही हैं, वह सभा कार्यालय को सूचित करें। ऐसा न करने की अवस्था में वह आर्यसमाज तथा संस्था हानि के लिए स्वयं जिम्मेवार होंगी। – उमेद शर्मा, सभामन्त्री

क्या इस जन्म से पहले.... पृष्ठ 12 का शेष.....

की सामग्री को एकत्र करने व बनवाने में लग जाता है। बहुत से लोग इसी बीच रोगग्रस्त होकर अल्पायु में ही मृत्यु की गोद में समा जाते हैं। अत: इस तुच्छ अवधि के जीवनकाल में हमें अपने मोह व लोभ पर विजय पानी चाहिये। इसके साथ ही हमें सत्यार्थप्रकाश, वेद एवं वैदिक साहित्य का अध्ययन कर अपना ज्ञान बढ़ाना चाहिये और दु:ख निवारण के उपाय ज्ञान प्राप्ति व सत्कर्मों को करके करने चाहिये। यही जीवन पद्धति श्रेष्ठ व उत्तम है। इससे इतर कोई भी जीवन शैली जो हमें सुखों की प्राप्ति के लिए केवल धनोपार्जन करने के लिये प्रेरित करती तथा वेदोक्त ईश्वरोपासना आदि की उपेक्षा करती है, सर्वांश में उत्तम व लाभप्रद नहीं हो सकतीं। इन बातों व तथ्यों को हमें जानना व समझना चाहिये। इसी में हमारा हित है। इनकी उपेक्षा हमारा भविष्य दु:खद व निराशाजनक बना सकते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगश्वर कृष्ण तथा वेदों वाले ऋषि दयानन्द के उदाहरण व उनके जीवन चरित्रों को हमें अपने ध्यान व विचारों में स्थापित करना चाहिये। उनके जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिये। ऐसा करके हमारा जीवन आत्मा के जन्म के उद्देश्य को पूरा करने में साधक व सार्थक होगा। यह सत्य एवं प्रामाणित है कि इस जन्म से पूर्व भी हमारा अस्तित्व था, यदि न होता तो हमारा जन्म क्योंकर होता? इस जन्म में मृत्यु होने पर भी हमारा अस्तित्व बना रहेगा। मृत्यु का होना आत्मा का अभाव व नाश नहीं है अपितु यह पुनर्जन्म का कारण व आधार है। अत: इनको ध्यान में रखकर ही हमें अपने जीवन को जीना चाहिये।

आवश्यक सूचना

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक के सभी ग्राहकों को सूचित किया जाता है कि जिन ग्राहकों का जो भी बकाया शुल्क बनता है, वह बकाया शुल्क सभा कार्यालय में जमा करें या मनीऑर्डर द्वारा भेजने का कष्ट करें ताकि हम आपकी पत्रिका समय पर भेजते रहें। शुल्क भेजते समय आप ग्राहक संख्या व मोबाइल नंबर अवश्य लिखें।
–रघुवरदत्त, पत्रिका लिपिक, 7206865945

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा के यशस्वी मन्त्री श्री उमेद सिंह शर्मा का सम्मान करते हुए सभा के विशेष आमन्त्रित अन्तरंग सदस्य श्री ब्रह्मदेव आर्य व श्री इन्द्रलाल आर्य (महेन्द्रगढ़) आदि अनेक गणमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे।

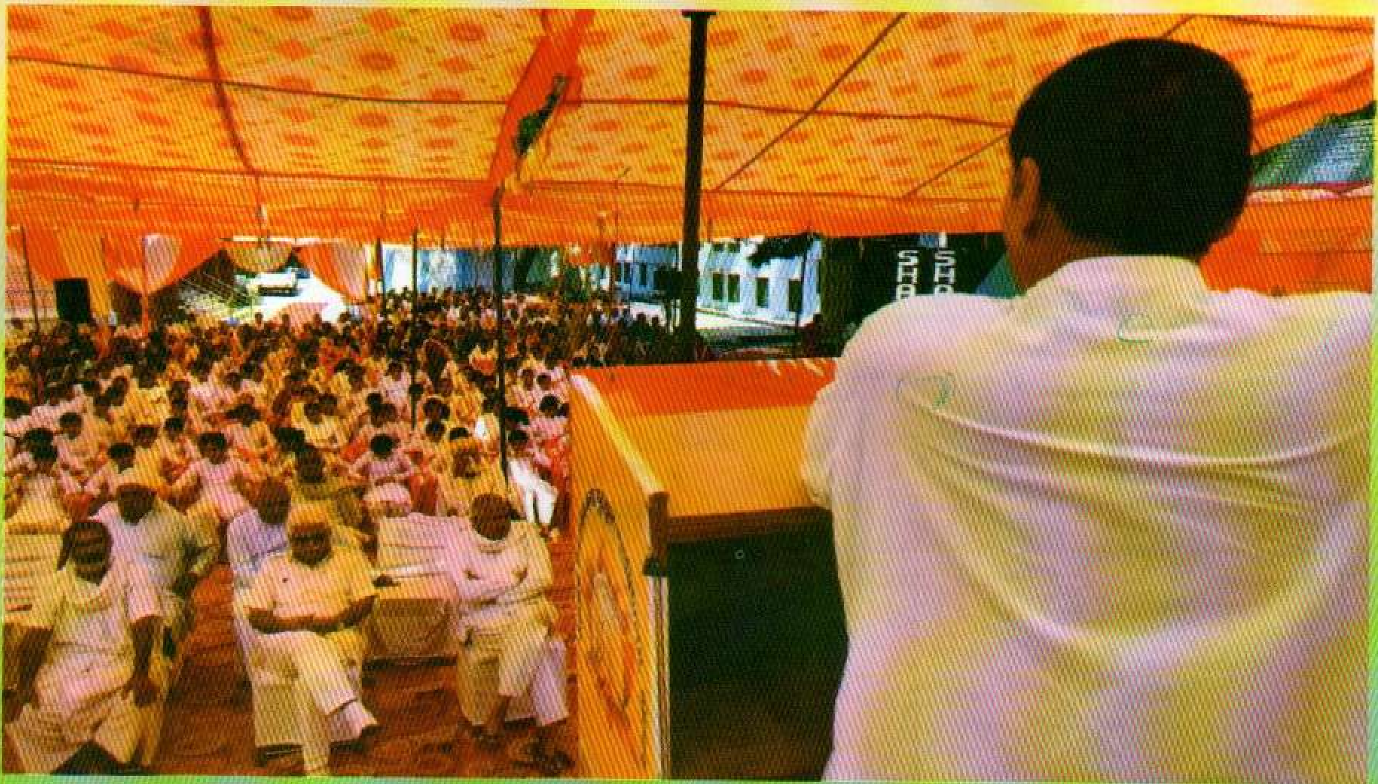

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय पंचगांव चरखी दादरी के 33वें वार्षिकोत्सव पर आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के यशस्वी मंत्री आदरणीय उमेद शर्मा मुख्य अतिथि के रूप में पधारे। इस अवसर पर उन्होंने कन्याओं के लिए 11,000 रुपए का सात्त्विक दान भी दिया।

फरीदाबाद, पलवल, गुरुग्राम आदि जिलों में वेदप्रचार यात्रा का शुभारम्भ करते हुए सभा के संरक्षक श्री कन्हैयालाल आर्य, सभा के उपप्रधान श्री देशबन्धु आर्य, स्वामी नित्यानन्द, आचार्य ऋषिपाल, श्री हरिश्चन्द्र शास्त्री, श्री रणदीप सरपंच, प्रिं० सुशील शास्त्री, श्री जयपाल शास्त्री, श्री देवराज आर्य, डॉ० धर्मप्रकाश आर्य, श्री रघुवीर शास्त्री आदि अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

प्रेषक :
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा
दयानन्द मठ, रोहतक
हरियाणा, 124001

श्री ....

पता ....

....

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा (रजि.) के स्वामित्व में मुद्रक, प्रकाशक उमेद शर्मा ने दुर्गेश्वरी प्रिंटर्स के लिए आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, रोहतक से मुद्रित एवं कार्यालय, सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ रोहतक-124001 से प्रकाशित।

– सम्पादक उमेद शर्मा